तैरने वाला समाज डूब रहा है

अनुपम मिश्र

जुलाई (2004) के पहले पखवाड़े में उत्तर बिहार में आई भयानक बाढ़ अब आगे निकल गई है। लोग उसे भूल गए हैं। लेकिन याद रखना चाहिए कि उत्तर बिहार उस बाढ़ की मंजिल नहीं था। वह एक पड़ाव भर था। बाढ़ की शुरुआत नेपाल से होती है फिर वह उत्तर बिहार आती है। उसके बाद बंगाल जाती है। सबसे अंत में सितंबर के अंत या अक्तूबर प्रारम्भ में वह बांग्लादश में अपनी आखिरी उपस्थिति जताते हुए सागर में मिलती है। इस बार उत्तर बिहार में बाढ़ ने बहुत अधिक तबाही मचाई। कुछ दिन सभी का ध्यान इसकी तरफ़ गया। जैसा कि अक्सर होता है, हेलिकॉप्टर आदि से दौरे हुए। फिर हम इसको भूल गए।

बाढ़ अतिथि नहीं है। यह कभी अचानक नहीं आती। दो–चार दिन का अंतर पड़ जाए तो बात अलग है। इसके आने की तिथियाँ बिल्कुल तय हैं। लेकिन जब बाढ़ आती है तो हम कुछ ऐसा व्यवहार करते हैं कि यह अचानक आई विपत्ति है। इसके पहले जो तैयारियाँ करनी चाहिए, वे बिल्कुल नहीं हो पाती हैं। इसलिये अब बाढ़ की मारक क्षमता पहले से अधिक बढ़ चली है। पहले शायद हमारा समाज बिना इतने बड़े प्रशासन के या बिना इतने बड़े निकम्मे प्रषासन के अपना इंतज़ाम बखूबी करना जानता था। इसलिये बाढ़ आने पर वह इतना परेशान नहीं दिखता था।

इस बार की बाढ़ ने उत्तर बिहार को कुछ अभिषप्त इलाके की तरह छोड़ दिया है। सभी जगह बाढ़ से निपटने में अव्यवस्था की चर्चा हुई है। अव्यवस्था के कई कारण भी गिनाए गए हैं– वहाँ की असहाय गरीबी आदि। लेकिन बहुत कम लोगों को इस बात का अंदाज़ होगा कि उत्तर बिहार एक बहुत ही संपन्न टुकड़ा रहा है इस प्रदेश का। मुजफ़्फ़पुर की लीचियाँ, पूसा ढोली की ईख, दरभंगा का शाहबसंत धान, शकरकंद, आम, चीनिया केला और बादाम और यहीं के कुछ इलाक़ों में पैदा होने वाली तंबाकू, जो पूरे शरीर की नसों को हिला कर रख देती है। सिलोत क्षेत्र का पतले–से–पतला चूड़ा जिसके बारे में कहा जाता है कि वह नाक की हवा से उड़ जाता है। उसके स्वाद की चर्चा तो अलग ही है। वहाँ धान की ऐसी भी किस्में रहीं हैं जो बाढ़ के पानी के साथ–साथ खेलती हुई ऊपर उठती जाती थीं और फिर बाढ़ को विदा कर खलिहान में आती थीं। फिर दियारा के संपन्न खेत।

सुधी पाठक इस सूची को न जाने कितना बढ़ा सकते हैं। इसमें पटसन और नील भी जोड़ लें तो आप 'दुनिया के सबसे बड़े' यानी लंबे प्लेटफ़ार्म पर अपने आप को खड़ा पाएँगे। एक पूरा संपन्न इलाक़ा उत्तर बिहार आज दयनीय स्थिति में क्यों पड़ गया है? हमें सोचना चाहिए। सोनपुर का

प्लेटफ़ॉर्म। ऐसा कहते हैं कि यह हमारे देश का सबसे लम्बा प्लेटफ़ॉर्म। यह अंग्रेजों के समय में बना था। क्यों बनाया गया इतना बड़ा प्लेटफ़ार्म? यह वहाँ की संपन्नतम चीज़ों को रेल से ढोकर देश के भीतर और बाहर ले जाने के लिये बनाया गया था। लेकिन आज हम इस इलाक़े की कोई चिंता नहीं कर रहे हैं और उसे एक तरह से लाचारी में छोड़ बैठे हैं।

बाढ़ आने पर सबसे पहला दोष तो हम नेपाल को देते हैं। नेपाल एक छोटा–सा देश है। बाढ़ के लिये हम उसे कब तक दोषी ठहराते रहेंगे? कहा जाता है कि नेपाल ने पानी छोड़ा, इसलिये उत्तर बिहार बह गया। यह जाँचने लायक़ बात होगी कि नेपाल कितना पानी छोड़ता है। मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि नेपाल बाढ़ का पहला हिस्सा है। वहाँ हिमालय की चोटियों पर जो पानी गिरता है, उसे रोकने की उसके पास कोई क्षमता और साधन नहीं है और शायद उसे रोकने की कोई व्यवहारिक ज़रूरत भी नहीं है। रोकने से ख़तरे और बढ़ सकते हैं। इसलिये नेपाल पर दोष थोपना बंद करना होगा।

यदि नेपाल पानी रोकेगा तो आज नहीं तो कल हमें अभी की बाढ़ से भी भयंकर बाढ़ को झेलने की तैयारी करके रखनी पड़ेगी। हम सब जानते हैं कि हिमालय का यह हिस्सा कच्चा है और इसमें कितनी भी सावधानी और ईमानदारी से बनाए गए बाँध किसी–न किसी तरह से प्रकृति की किसी छोटी–सी हलचल से टूट भी सकते हैं। और तब आज से कई गुना भयंकर बाढ़ हमारे सामने आ सकती है। यदि नेपाल को ही दोषी ठहराया जाए तो कम–से कम बिहार के बाढ़ नियंत्रण का एक बड़ा भाग–पैसों का, इंजीनियरों का, नेताओं का, अप्रैल और मई में नेपाल जाना चाहिए ताकि वहाँ, यहाँ की बाढ़ से निपटने के लिये पुख़्ता इंतज़ामों के बारे में बातचीत की जा सके। बातचीत मित्रवत हो, तकनीकी तौर पर हो और ज़रूरत पड़े तो फिर मई में ही प्रधानमंत्री नहीं तो प्रदेश के मुख्यमंत्री ही नेपाल जाएँ और आगामी जुलाई में आने वाली बाढ़ के बारे में चर्चा करके देखें।

हमें भूलना नहीं चाहिए कि हम बाढ़ के रास्ते में हैं। उत्तर बिहार से पहले नेपाल में भी काफ़ी लोगों को बाढ़ के कारण जान से हाथ धोना पड़ा है। पिछले साल नेपाल में भयंकर भूस्खलन हुए थे, और तब हमें पता चल जाना चाहिए था कि अगले साल हम पर भी बड़ा संकट आएगा, क्योंकि हिमालय के इस कच्चे भाग में जितने भूस्खलन हुए, उन सबका मलवा वहाँ–का वहीं पड़ा था और वह इस वर्ष की बरसात में नीचे उतर आने वाला था।

उत्तर बिहार की परिस्थिति भी अलग से समझने लायक़ है। यहाँ पर हिमालय से अनगिनत नदियाँ सीधे उतरती हैं और उनके उतरने का एक ही सरल उदाहरण दिया जा सकता है। जैसे पाठशाला

में टीन की फिसलपट्टी होती है, उसी तरह से ये नदियाँ हिमालय से बर्फ़ की फिसलपट्टी से धड़ाधड़ नीचे उतरती हैं। हिमालय के इसी क्षेत्र में नेपाल के हिस्से में सबसे ऊँची चोटियाँ हैं और कम दूरी तय करके ये नदियाँ उत्तर भारत में नीचे उतरती हैं। इसलिये इन नदियों की पानी की क्षमता, उनका वेग, उनके साथ कच्चे हिमालय से, शिवालिक से आने वाली मिट्टी और गाद इतनी अधिक होती है कि उसकी तुलना पश्चिमी हिमालय और उत्तर–पूर्वी हिमालय से नहीं कर सकते।

एक तो वह सबसे ऊँचा क्षेत्र है, कच्चा भी है, फिर भ्रंश पर टिका हुआ इलाक़ा है। यहाँ भौगोलिक परिस्थितियाँ ऐसी हैं जहाँ से हिमालय का जन्म हुआ है। बहुत कम लोगों को अंदाज़ होगा कि हमारा समाज भी भू–विज्ञान को, 'जिओ माफ्रोलॉजी' को खूब अच्छी तरह समझता है। इसी इलाके में ग्यारहवीं शताब्दी में बना वराह अवतार का मंदिर भी है जो किसी और इलाके में आसानी से मिलता नहीं है। यह हिस्सा करोड़ साल पहले किसी एक घटना के कारण हिमालय के रूप में सामने आया। यहीं से फिर नदियों का जाल बिछा। ये सरपट दौड़ती हुई आती हैं– सीधी उतरती हैं। इससे उनकी ताक़त और बढ़ जाती है।

जब हिमालय बना तब कहते हैं कि उसके तीन पुड़े थे। तीन तहें थीं। जैसे मध्यप्रदेश के हिस्से में सतपुड़ा है वैसे यहाँ तीन पुड़े थे। आंतरिक, मध्य और बाह्य। बाह्य हिस्सा शिवालिक सबसे कमज़ोर माना जाता है। वैसे भी भूगोल की परिभाषा में हिमालय के लिये कहा जाता है कि यह अरावली, विंध्य और सतपुड़ा के मुक़ाबले बच्चा है। महीनों के बारह पन्ने पलटने से हमारे सभी तरह के कैलेंडर दीवार पर से उतर जाते हैं। लेकिन प्रकृति के कैलेंडर में लाखों वर्ष का एक पन्ना होता है। उस कैलेंडर से देखें तो शायद अरावली की उम्र नब्बे वर्ष होगी और हिमालय? अभी चार–पाँच बरस का शैतान बच्चा है। वह अभी उछलता–कूदता है, खेलता–डोलता है। टूट–फूट उसमें बहुत होती रहती है। अभी उसमें प्रौढ़ता या वयस्क वाला संयम, शांत, धीरज वाला गुण नहीं आया है। इसलिये हिमालय की ये नदियाँ सिर्फ़ पानी नहीं बहाती हैं, वे साद, मिट्टी पत्थर और बड़ी–बड़ी चट्टानें भी साथ लाती हैं। उत्तर बिहार का समाज अपनी स्मृति में इन बातों को दर्ज कर चुका था।

एक तो चंचल बच्चा हिमालय, फिर कच्चा और तिस पर भूकम्प वाला क्षेत्र भी–क्या कसर बाक़ी है? हिमालय के इस क्षेत्र से भूकम्प की एक बड़ी और प्रमुख पट्टी गुज़रती है। दूसरी पट्टी इस पट्टी से थोड़े ऊपर के भाग में मध्य हिमालय में आती हैं। सारा भाग लाखों बरस पहले के अस्थिर मलबे के ढेर से बना है और फिर भूकम्प इसे जब चाहे और अस्थिर बना देते हैं। भू–विज्ञान बताता है कि इस उत्तर बिहार में और नेपाल के क्षेत्र में, धरती में समुद्र की तरह लहरें उठी थीं और फिर वे एक दूसरे से टकरा कर ऊपर–ही–ऊपर उठती चली गईं और फिर कुछ समय के लिये स्थिर हो गईं, यह 'स्थिरता' तांडव नृत्य की तरह है। आधुनिक विज्ञान की भाषा में लाखों वर्ष पहले 'मियोसिन' काल में घटी इस घटना को उत्तरी बिहार के समाज ने अपनी स्मृति में वराह अवतार के रूप में जमा किया है। जिस डूबती पृथ्वी को वराह ने अपने थूथनों से ऊपर उठाया था, वह आज भी कभी भी काँप जाती है। 1934 में जो भूकम्प आया था उसे अभी भी लोग भूले नहीं हैं।

लेकिन यहाँ के समाज ने इन सब परिस्थितियों को अपनी जीवन शैली में, जीवन दर्शन में धीरे–धीरे आत्मसात किया था। प्रकृति के इस विराट रूप में वह एक छोटी–सी बूँद की तरह शामिल हुआ।

उसमें कोई घमंड नहीं था। वह इस प्रकृति से खेल लेगा, लड़ लेगा। वह उसकी गोद में कैसे रह सकता है– इसका उसने अभ्यास करके रखा था। क्षणभंगुर समाज ने करोड़ वर्ष की इस लीला में अपने को प्रौढ़ बना लिया और फिर अपनी प्रौढ़ता को हिमालय के लड़कपन की गोद में डाल दिया था। लेकिन पिछले सौ–डेढ़–सौ साल में हमारे समाज ने ऐसी बहुत सारी चीज़ें की हैं जिनसे उसका विनम्र स्वभाव बदला है और उसके मन में थोड़ा घमंड भी आया है। समाज के मन में न सही तो उसके नेताओं के, योजनाकारों के मन में यह घमंड आया है।

समाज ने पीढ़ियों से, शताब्दियों से, यहाँ फिसलगुंडी की तरह फुर्ती से उतरने वाली नदियों के साथ जीवन जीने की कला सीखी थी, बाढ़ के साथ बढ़ने की कला सीखी थी। उसने और उसकी फ़सलों ने बाढ़ में डूबने के बदले तैरने की कला सीखी थी। वह कला आज धीरे–धीरे मिटती जा रही है। उत्तर बिहार में हिमालय से उतरने वाली नदियों की संख्या अनंत है। कोई गिनती नहीं है, फिर भी कुछ लोगों ने उनकी गिनती की है। आज लोग यह मानते हैं कि यहाँ पर इन नदियों ने दुख के अलावा कुछ नहीं दिया है पर इनके नाम देखेंगे तो इनमें से किसी भी नदी के नाम में, विशेशण में दुख का कोई पर्यायवाची देखने को नहीं मिलेगा। लोगों ने नदियों को हमेशा की तरह देवियों के रूप में देखा है। लेकिन हम उनके विशेशण दूसरी तरह से देखें तो उनमें आपको तरह–तरह के ऐसे शब्द मिलेंगे जो उस समाज और नदियों के रिश्ते को बताते हैं। कुछ नाम संस्कृत से होंगे। कुछ गुणों पर होंगे और एकाध अवगुणों पर भी हो सकते हैं।

इन नदियों के विशेषणों में सबसे अधिक संख्या है– आभूषणों की। और ये आभूषण हंसुली, अंगूठी और चंद्रहार जैसे गहनों के नाम पर हैं। हम सभी जानते हैं कि ये आभूषण गोल आकार के होते हैं– यानी यहाँ पर नदियाँ उतरते समय इधर–उधर सीधी बहने के बदले आड़ी–तिरछी गोल आकार में क्षेत्र को बाँधती हैं, गाँवों को लपेटती हैं। और उन गाँवों को लपेटती हैं और उन गाँवों का आभूषण ों की तरह श्रृंगार करती हैं। उत्तर बिहार के कई गाँव इन 'आभूषणों' से ऐसे सजे हुए थे कि बिना पैर धोए आप इन गाँवों में प्रवेश नहीं कर सकते थे। इनमें रहने वाले आपको गर्व से बताएँगे कि हमारे गाँव की पवित्र धूल गाँव से बाहर नहीं जा सकती और आप अपनी (शायद अपवित्र) धूल गाँव में ला नहीं सकते। कहीं–कहीं बहुत व्यवहारिक नाम भी मिलेंगे। एक नदी का नाम गोमूत्रिका है– जैसे कोई गाय चलते–चलते पेशाब करती है तो ज़मीन पर आड़े–तिरछे निशान पड़ जाते हैं। इतनी आड़ी–तिरछी बहने वाली यह नदी हैं। इसमें एक–एक नदी का स्वभाव देखकर लोगों ने इसको अपनी स्मृति में रखा है।

एक तो इन नदियों का स्वभाव और ऊपर से पानी के साथ आने वाली साद के कारण ये अपना रास्ता बदलती रहती हैं। कोसी के बारे में कहा जाता है कि पिछले कुछ सौ साल में 148 किलोमीटर के क्षेत्र में अपनी धारा बदली है। उत्तर बिहार के दो जिलों की इंच भर ज़मीन भी कोसी ने नहीं छोड़ी है, जहाँ से वह बही न हो। ऐसी नदियों को हम किसी तरह के तटबंध या बाँध से बांध सकते हैं, यह कल्पना भी करना अपने आप में विचित्र है। समाज ने इन नदियों को अभिशाप की तरह नहीं देखा। उसने इनके वरदान को कृतज्ञता से देखा। उसने यह माना कि इन नदियों ने हिमालय की

क़ीमती मिट्टी इस क्षेत्र के दलदल में पटक कर बहुत बड़ी मात्रा में खेती योग्य ज़मीन निकाली है। इसलिये वह इन नदियों को बहुत आदर के साथ देखता रहा है। कहा जाता है कि पूरा–का–पूरा दरभंगा खेती योग्य हो सका तो इन्हीं नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी के कारण ही। लेकिन इनमें भी समाज ने उन नदियों को छांटा है जो अपेक्षाकृत कम साद वाले इलाके से आती हैं।

ऐसी नदियों में एक है– खिरोदी। कहा जाता है कि इसका नामकरण क्षीर अर्थात दूध से हुआ है क्योंकि इसमें साफ़ पानी बहता है। एक नदी जीवछ है, जो शायद जीवात्मा या जीव इच्छा से बनी होगी। सोनबरसा भी हैं। इन नदियों के नाम में गुणों का वर्ण देंगे तो किसी में भी बाढ़ से लाचारी की झलक नहीं मिलेगी। कई जगह लालित्य है इन नदियों के स्वभाव में। सुंदर कहानी है– मैथिली के कवि विद्यापति की। कवि जब अस्वस्थ हो गए तो उन्होंने अपने प्राण नदी में ही छोड़ने का प्रण किया। कवि प्राण छोड़ने नदी की तरफ चल पड़े, मगर बहुत अस्वस्थ होने के कारण नदी किनारे तक नहीं पहुँच सके। कुछ दूरी पर ही रह गए तो उन्होंने नदी से प्रार्थना की कि हे माँ, मेरे साहित्य में कोई शक्ति हो, मेरे कुछ पुण्य हों तो मुझे ले जाओ। कहते हैं कि नदी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और कवि को बहा ले गई।

नदियाँ विहार करती हैं, उत्तर बिहार में। वे खेलती हैं, कूदती हैं, यह सारी जगह उनकी हैं। इसलिये वे कहीं भी जाएँ उसे जगह बदलना नहीं माना जाता था। उत्तर बिहार में समाज का एक सरल दर्पण साहित्य रहा होगा तो दूसरा तरल दर्पण नदियाँ थीं। इन असंख्य नदियों में वहाँ का समाज अपना चेहरा देखता था और नदियों के चंचल स्वभाव को बड़े शांत भाव से देह में, अपने मन और अपने विचारों में उतारता था। इसलिये कभी वहाँ कवि विद्यापति जैसे सुंदर किस्से बनते तो कभी फुलपरास जैसी घटनाएँ रेत में उकेरी जाती। नदियों की लहरें रेत में लिखी इन घटनाओं को मिटाती नहीं थीं– हर लहर इन्हें पक्के शिलालेखों में बदलती थी। ये शिलालेख इतिहास में मिलें न मिलें लोगों के मन में, लोक स्मृति में मिलते थे। फुलपरास का किस्सा यहाँ दोहराने लायक़ है।

कभी भुतही नदी फुलपरास नाम के एक स्थान से रास्ता बदल कर कहीं और भटक गई। तब भुतही को वापस बुलाने के लिये अनुष्ठान किया गया। नदी ने मनुहार स्वीकार की और अगले वर्ष वापस चली आई! ये कहानियाँ समाज इसलिये याद रखवाना चाहता है कि लोगों को मालूम रहे कि यहाँ की नदियाँ कवि के कहने से भी रास्ता बदल देती हैं और साधारण लोगों के आग्रह को स्वीकार कर अपना बदला हुआ रास्ता फिर से सुधार लेती हैं। इसलिये इन नदियों के स्वभाव को ध्यान में रख कर जीवन चलाओ। ये सभी चीज़ें हम लोगों को इस तरफ़ ले जाती हैं कि जिन बातों को भूल गए हैं, उन्हें फिर से याद करें।

कुछ नदियों के बहुत विचित्र नाम भी समाज ने हजारों साल के अनुभव से रखे थे। इनमें एक विचित्र नाम है– अमरबेल। कहीं इसे आकाशबेल भी कहते हैं। इस नदी का उद्भव और संगम कहीं नहीं दिखाई देता है। कहाँ से निकलती है, किस नदी में मिलती है– ऐसी कोई पक्की जानकारी नहीं है। बरसात के दिनों में यह अचानक प्रकट होती है और जैसे पेड़ पर अमरबेल छा जाती हैं वैसे

ही एक बड़े इलाक़े में इसकी कई धाराएँ दिखाई देती हैं। फिर ये ग़ायब भी हो जाती हैं। यह भी ज़रूरी नहीं कि वह अगले साल इन्हीं धाराओं में से बहे। तब यह अपना कोई दूसरा नया जाल खोज लेती है। एक नदी का नाम है दस्यु नदी। यह दस्यु की तरह दूसरी नदियों की 'कमाई' हुई जलराशि का, उनके वैभव का हरण कर लेती हैं इसलिये पुराने साहित्य में इसका एक विशेशण वैभवहरण भी मिलता है।

फिर बिलकुल चालू बोलियों में भी नदियों के नाम मिलते हैं। एक नदी का नाम मरने है। इसी तरह एक नदी मरगंग है। भुतहा या भुतही का किस्सा तो ऊपर आ ही गया है। जहाँ ढेर सारी नदियाँ हर कभी हर कहीं से बहती हों, सारे नियम तोड़कर, वहाँ समाज ने एक ऐसी भी नदी खोज ली थी जो टस–से–मस नहीं होती थी। उसका नाम रखा गया– धर्ममूला। ऐसे भूगोलविद समझदार समाज के आज टुकड़े–टुकड़े हो गए हैं। ये सब बताते हैं कि नदियाँ यहाँ जीवंत भी हैं और कभी–कभी वे ग़ायब भी हो जाती हैं, भूत भी बन जाती हैं, मर भी जाती हैं। यह सब इसलिये होता है कि ऊपर से आने वाली साद उनमें–भरान और धसान–ये दो गतिविधियाँ इतनी तेज़ी से चलाती हैं कि उनके रूप हर बार बदलते जाते हैं।

बहुत छोटी–छोटी नदियों के वर्णन में ऐसा मिलता है कि इनमें ऐसे भँवर उठते हैं कि हाथियों को भी डुबो दें। इनमें चट्टानें और पत्थर के बड़े–बड़े टुकड़े आते हैं और जब वे आपस में टकराते हैं तो ऐसी आवाज आती है कि दिशाएं बहरी हो जाएँ! ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि कुछ नदियों में बरसात के दिनों में मगरमच्छों का आना इतना अधिक हो जाता है कि उनके सिर या थूथने गोबर के कंडे की तरह तैरते हुए दिखाई देते हैं। ये नदियाँ एक–दूसरे से बहुत मिलती हैं, एक–दूसरे का पानी लेती हैं और देती भी हैं। इस आदान–प्रदान में जो खेल होता है उसे हमने एक हद तक अब बाढ़ में बदल दिया है। नहीं तो यहाँ के लोग इस खेल को दूसरे ढंग से देखते थे। वे बाढ़ की प्रतीक्षा करते थे।

इन्हीं नदियों की बाढ़ के पानी को रोक कर समाज बड़े–बड़े तालाब में डालता था और इससे इनकी बाढ़ का वेग कम करता था। एक पुराना पद मिलता है– 'चार कोसी झाड़ी।' इसके बारे में नए लोगों को अब ज़्यादा कुछ पता नहीं हैं पुराने लोगों से ऐसी जानकारी एकत्र कर, यहाँ के इलाके का स्वभाव समझना चाहिए। चार कोसी झाड़ी का कुछ हिस्सा शायद चंपारण में बचा है। ऐसा कहते हैं कि पूरे हिमालय की तराई में चार कोस की चौड़ाई का एक घना जंगल बचा कर रखा गया था। इसकी लंबाई पूरे बिहार में 11–12 सौ किलोमीटर तक चलती थी। यह पूर्वी उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र तक जाता था। चार कोस चौड़ाई और उसकी लम्बाई हिमालय की पूरी तलहटी में थी। आज के ख़र्चीले, अव्यावहारिक तटबंधों के बदले यह विशाल वन–बंध बाढ़ में आने वाली नदियों को छानने का काम करता था। तब भी बाढ़ आती रही होगी, लेकिन उसकी मारक क्षमता ऐसी नहीं होगी।

ढाई हजार साल पहले के एक संवाद में बाढ़ का कुछ वर्णन मिलता है। संवाद भगवान बुद्ध और एक ग्वाले के बीच है। ग्वाले के घर में किसी दिन भगवान बुद्ध पहुँचे हैं। काली घटाएँ छाई हुई

हैं। ग्वाला बुद्ध से कह रहा है कि उसने अपना छप्पर कस लिया है, गाय को मज़बूती से खूँटे में बाँध दिया है, फ़सल काट ली हैं अब बाढ़ का कोई डर नहीं बचा है। आराम से चाहे जितना पानी बरसे। नदी देवी दर्शन देकर चली जाएगी। इसके बाद भगवान बुद्ध ग्वाले से कह रहे हैं कि मैंने तृष्णा की नावों को खोल दिया है। अब मुझे बाढ़ का कोई डर नहीं है। युगपुरुष साधारण ग्वाले की झोपड़ी में नदी किनारे रात बिताएँगे। उस नदी के किनारे, जिसमें रात को कभी भी बाढ़ आ जाएगी। पर दोनों निष्चिंत हैं। आज क्या ऐसा संवाद बाढ़ से ठीक पहले हो पाएगा?

ये सारी चीज़ें हमें बताती हैं कि लोग इस पानी से, इस बाढ़ से खेलना जानते थे। यहाँ का समाज इस बाढ़ में तैरना जानता था। इस बाढ़ में तैरना भी जानता है। इस पूरे इलाक़े में ह्रद और चौरा या चौर दो शब्द बड़े तालाबों के लिये हैं। इस इलाके में पुराने और बड़े तालाबों का वर्णन खूब मिलता है। दरभंगा का एक तालाब इतना बड़ा था कि उसका वर्णन करने वाले उसे अतिशयोक्ति तक ले गए। उसे बनाने वाले लोगों ने अगस्त्य मुनि तक को चुनौती दी कि तुमने समुद्र का पानी पीकर उसे सुखा दिया था, अब हमारे इस तालाब को पीकर सुखा दो तब जानें। वैसे समुद्र जितना बड़ा कुछ भी न होगा– यह वहाँ के लोगों को भी पता था। पर यह खेल है कि हम इतना बड़ा तालाब बनाना जानते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी तक वहाँ के बड़े–बड़े तालाबों के बड़े–बड़े किस्से चलते थे। चौर में भी बाढ़ का अतिरक्त पानी रोक लिया जाता था। परिहारपुर, भवारा और आलापुर आदि क्षेत्रों में दो–तीन मील लम्बे–चौड़े तालाब थे। धीरे–धीरे बाद के नियोजकों के मन में यह आया कि इतनी जलराशि से भरे बड़े–बड़े तालाब बेकार की जगह घेरते हैं– इनका पानी सुखा कर ज़मीन लोगों को खेती के लिये उपलब्ध करा दें। इस तरह हमने दो–चार खेत ज़रूर बढ़ा लिये, लेकिन दूसरी तरफ शायद सौ–दो–सौ खेत हमने बाढ़ को भेंट चढ़ा दिए। ये बड़े–बड़े तालाब वहाँ बाढ़ का पानी रोकने का काम करते थे।

आज अंग्रेज़ी में रेन वॉटर हार्वेस्टिंग शब्द है। इस तरह का पूरा ढाँचा उत्तर बिहार के लोगों ने बनाया था– वह 'फ़्लड वॉटर हार्वेस्टिंग सिस्टम था। उसी से उन्होंने यह खेल खेला था। तब भी बाढ़ आती थी, लेकिन वे बाढ़ की मार को कम–से–कम करना जानते थे। तालाब का एक विशेषण यहाँ मिलता है– नदिया ताल। मतलब है– वह वर्षा के पानी से नहीं, बल्कि नदी के पानी से भरता था। पूरे देश में वर्षा के पानी से भरने वाले तालाब मिलेंगे। लेकिन यहाँ हिमालय से उतरने वाली नदियाँ इतना अधिक पानी लेकर आती हैं कि नदी से भरने वाला तालाब बनाना ज़्यादा व्यवहारिक

होता था। नदी का पानी धीरे–धीरे कहीं–न–कहीं रोकते–रोकते उसकी मारक क्षमता को उपकार में बदलते–बदलते आगे गंगा में मिलाया जाता था।

आज के नए लोग मानते हैं कि समाज अनपढ़ है, पिछड़ा है। नए लोग ऐसे दंभी हैं। उत्तर बिहार से निकलने वाली बाढ़ पश्चिम बंगाल होते हुए बांग्लादेश में जाती है। एक मोटा अंदाजा है कि बांग्लादेश में कुल जो जलराशि इकट्ठी होती है उसके केवल दस प्रतिशत उसे बादलों से मिलता है। नब्बे फ़ीसदी उसे बिहार, नेपाल और दूसरी तरफ़ से आने वाली नदियों से मिलता है। वहाँ तीन बड़ी नदियाँ–गंगा, मेघना और ब्रह्मपुत्र हैं। ये तीनों नदियाँ नब्बे फ़ीसदी पानी उस देष में लेकर आती हैं और बाकी कुल दस फ़ीसदी वर्षा से मिलता है। बांग्लादेश का समाज सदियों से इन नदियों के किनारे, इनके संगम के किनारे रहना जानता था। वहाँ नदी मीलों में फैल जाती है। हमारी जैसी नदियाँ नहीं होतीं कि एक तट से दूसरा तट दिखाई दे। वहाँ की नदियाँ क्षितिज तक चली जाती हैं। उन नदियों के किनारे भी वह न सिर्फ बाढ़ से खेलना जानता था, बल्कि उसे अपने लिये उपकारी भी बनाना जानता था। इसी में से अपनी अच्छी फ़सल निकालता था, आगे का जीवन चलाता था और इसीलिये सोनार बांग्ला कहलाता था।

लेकिन धीरे–धीरे चार कोसी झाड़ी गई। ह्रद और चौर चले गए। कम हिस्से में अच्छी खेती करते थे, उसको लालच में थोड़े बड़े हिस्से में फैला कर देखने की कोशिष की। और हम अब बाढ़ में डूब जाते हैं। बस्तियाँ कहाँ बनेंगी, कहाँ नहीं बनेंगी इसके लिये बहुत अनुशासन होता था। चौर के क्षेत्र में केवल खेती होगी, बस्ती नहीं बसेगी– ऐसे नियम टूट चुके हैं तो फिर बाढ़ भी नियम तोड़ने लगी है। उसे भी धीरे–धीरे भूल कर चाहे आबादी का दबाव कहिए या अन्य अनियंत्रित विकास के कारण– अब हम नदियों के बाढ़ के रास्ते में सामान रखने लगे हैं, अपने घर बनाने लगे हैं। इसलिये नदियों का दोश नहीं है। अगर हमारी पहली मंजिल तक पानी भरता है तो इसका एक बड़ा कारण उसके रास्ते में विकास करना है।

एक और बहुत बड़ी चीज पिछले दो–एक सौ साल में हुई हैं वे हैं–तटबंध और बाँध। छोटे से लेकर बड़े बाँध इस इलाक़े में बनाए गए हैं बग़ैर इन नदियों का स्वभाव समझे। नदियों की धारा इधर से अधर न भटके– यह मान कर हमने एक नए भटकाव के विकास की योजना अपनाई है। उसको तटबंध कहते हैं। ये बांग्लादेश में भी बने हैं और इनकी लंबाई सैकड़ों मील तक जाती हैं। और उसके बाद आज पता चलता हैं कि इनसे बाढ़ रुकने के बजाय बढ़ी है, नुक़सान ही ज़्यादा हुआ है अभी तो कहीं–कहीं ये एक मात्र उपकार यह करते हैं कि एक बड़े इलाक़े की आबादी जब डूब से प्रभावित होती है, बाढ से प्रभावित होती है तो लोग इन तटबंधों पर ही शरण लेने आ जाते हैं। जो बाढ़ से बचाने वाली योजना थी वह केवल शरणास्थली में बदल गई है। इन सब चीज़ों के बारे में सोचना चाहिए। बहुत पहले से लोग कह रहे हैं कि तटबंध व्यवहारिक नहीं हैं। लेकिन हमने देखा है कि पिछले डेढ़ सौ–दो–सौ साल में हम लोगों ने तटबंधों के सिवाय और किसी चीज़ में पैसा नहीं लगाया है, ध्यान नहीं लगाया है।

बाढ़ अगले साल भी आएगी। यह अतिथि नहीं हैं इसकी तिथियाँ तय हैं और हमारा समाज इससे खेलना जानता था। लेकिन अब हम जैसे–जैसे ज़्यादा विकसित होते जा रहे हैं इसकी तिथियाँ

और इसका स्वभाव भूल रहे हैं। इस साल कहा जाता है कि बाढ़ राहत में खाना बाँटने में, खाने के पैकेट गिराने में हेलीकॉप्टर का जो इस्तेमाल किया गया, उसमें चौबीस करोड़ रुपए का ख़र्च आया था। शायद इस लागत से सिर्फ़ दो करोड़ रुपए की रोटी–सब्जी बाँटी गई थी। ज़्यादा अच्छा होता कि इस इलाक़े में चौबीस करोड़ के हेलीकॉप्टर के बदले हम कम–से–कम बीस हज़ार नावें तैयार रखते और मछुआरे, नाविकों, मल्लाहों को सम्मान के साथ इस काम में लगाते। यह नदियों की गोदी में पला–बढ़ा समाज है। इसे बाढ़ भयानक नहीं दिखती। अपने घर की, परिवार की सदस्य की तरह दिखती है– उसे हाथ में हमने बीस हज़ार नावें छोड़ी होतीं।

इस साल नहीं छोड़ी गईं तो अगले साल इस तरह की योजना बन सकती है। नावें तैयार रखी जाएँ– उनके नाविक तैयार हों, उनका रजिस्टर तैयार हो, जो वहाँ के जिलाधिकारी या इलाक़े की किसी प्रमुख संस्था या संगठन के पास हो, उसमें कितनी राहत की सामग्री कहाँ–कहाँ से रखी जाएगी यह सब तय हो। और हरेक नाव को निश्चित गाँवों की संख्या दी जाए। डूब के प्रभाव को देखते हुए, पुराने अनुभव को देखते हुए उनको सबसे पहले कहाँ–कहाँ अनाज या बना–बनाया खाना पहुँचाना है इसकी तैयारी हो। तब हम पाएँगे कि चौबीस करोड़ के हेलीकॉप्टर के बदले शायद यह काम एक या दो करोड़ में कर सकेंगे। और इस राशि की एक–एक पाई उन लोगों तक जाएगी जिन तक बाढ़ के दिनों में उसे जाना चाहिए।

बाढ़ आज से नहीं आ रही है। अगर आप बहुत पहले का साहित्य न भी देखें तो देश के पहले राष्ट्रपति राजेंद्र बाबू की आत्मकथा में देखेंगे तो उसमें छपरा की भयानक बाढ़ का उल्लेख मिलेगा। उस समय कहा जाता है कि एक ही घंटे में छत्तीस इंच वर्षा हुई थी और पूरा छपरा जिला पानी में डूब गया था। तब भी राहत का काम हुआ और तब पार्टी के कार्यकर्ताओं ने सरकार से आगे बढ़ कर काम किया था। उस समय भी आरोप लगे थे कि प्रशासन ने इसमें कोई ख़ास मदद नहीं दी। आज भी ऐसे आरोप लगते हैं, ऐसी ही बाढ़ आती है। तो चित्र बदलेगा नहीं। बड़े नेताओं की आत्मकथाओं में इसी तरह की लाइनें लिखी जाएँगी और अखबारों में भी इसी तरह की चीजें छपेंगी। लेकिन हमें कुछ विशेष करके दिखाना है तो हम लोगों को नेपाल, बिहार, बंगाल और बांग्लादेश–सभी को मिलकर बात करनी होगी। पुरानी स्मृतियों में बाढ़ से निपटने के क्या तरीक़े थे, उनका फिर से आदान–प्रदान करना होगा। उन्हें समझना होगा और उन्हें नई व्यवस्था में हम किस तरह से ज्यों–का–त्यों या कुछ सुधार कर अपना सकते हैं, इस पर ध्यान देना होगा।

जब शुरू–शुरू में अंग्रेजों ने इस इलाक़े में नहरों का, पानी का काम किया, तटबंधों का काम किया तब भी उनके बीच में एक–दो ऐसे सहृदय समझदार और यहाँ की मिट्टी को जानने–समझने वाले अधिकारी रहे जिन्होंने ऐसा माना था कि जो कुछ किया गया है उससे यह इलाक़ा सुधरने के बदले और अधिक बिगड़ा है। इस तरह के तथ्य हमारे पुराने दस्तावेजों में हैं। इन सबको एक साथ समझना– बूझना चाहिए और इसमें से फिर कोई रास्ता निकालना चाहिए। नहीं तो उत्तर बिहार की बाढ़ का प्रश्न ज्यों–का–त्यों बना रहेगा। हम उसका उत्तर नहीं खोज पाएँगे।

(साभार – https://m-hindi.indiawaterportal.org/)

बारिश ने 13 घंटे रोका बदरीनाथ का रास्ता
महिलाओं ने एनएच के अफसरों-कर्मियों को घेरा
गदेरों में उड़ेल रहे मलबा
बाढ़ का खतरा बढ़ा
मुआवजा नहीं मिलने से ग्रामीणों का प्रदर्शन
चिन्यालीसौड़। ऑल वेदर रोड परियोजना के तहत अधिग्रहित की गई भूमि का प्रतिकर नहीं मिलने से नाराज पीपलमंडी भट्ट मोहल्ले के लोगों ने बुधवार को प्रदर्शन किया। ऑल वेदर रोड के तहत पीपलमंडी-बड़ेथी बाईपास पर चल रहे सड़क चौड़ीकरण कार्य के लिए भट्ट मोहल्ला क्षेत्र के लोगों की अधिग्रहित की गई थी, जिसके बदले
HAMOLI
PITHORAGARH
BAGESHWAR
CHAMPAWAT
NAGAR
ऑल वेदर रोड का काम रुकवाया
21 June 2019
होटल के ऊपर गिरा बोल्डर, बाल बाल बचा परिवार
बड़कोट। खरादी क्षेत्र में ऑल वेदर रोड के तहत हो रहे निर्माण कार्य से गिरे बोल्डर की चपेट में आने से एक होटल आंशिक रूप से क्षतिग्रस्त हो गया है। हादसे में होटल मालिक व उसका परिवार बाल बाल बचा। सोमवार दोपहर तीन बजे होटल कारोबारी मोहन सिंह पंवार परिवार के साथ होटल के कमरे में आराम कर रहा था, तभी ऑल वेदर रोड के तहत यमुनोत्री हाईवे पर चल रहे निर्माण कार्य की साइट से एक बोल्डर उनके पांच मंजिला होटल से टकरा गया, जिससे होटल का कुछ हिस्सा क्षतिग्रस्त हो गया। घटना से आक्रोशित होटल मालिक व अन्य ग्रामीणों ने निर्माण कार्य बंद करा कर प्रदर्शन शुरू कर दिया है। उन्होंने प्रशासन से दोषियों से नुकसान की भरपाई की मांग की। उधर, एनएच के ईई नवनीत पांडे ने कहा कि कंपनी नुकसान
बहुगुणा और प्रेमनगर में घरों में घुसा पानी